राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

पावन हों शिक्षा संस्कार
शुद्ध आचरण का आधार

काम काज हो या व्यापार
सभी जगह अच्छा व्यवहार

मित्र पड़ोसी घर परिवार
संबंधों में निश्छल प्यार

यदि हो पाएं तो संसार में
होगा सुख शांति प्रसार

वर्ष 64 | जुलाई-सितम्बर 2016 | अंक 3

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक		पृष्ठ
1.	भजन *भक्त रैदास*	01
2.	गीता की व्याख्या *लालाजी महाराज*	02
3.	ईश्वर की इच्छा में प्रसन्न रहें *महात्मा डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज*	08
4.	साधन *अनमोल वचन*	14
5.	मौन साधना क्या है ? *परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब*	17
6.	हबीब आज्वमी *प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र*	22
6.	सच बोलना	27
7.	भिखारी से भीख *प्रेरक प्रसंग*	28

राम ॐ संदेश

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी

सम्पादक

डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष 64 जुलाई–सितम्बर 2016 अंक–3

भजन

तेरा जन काहे को बोलै।
बोलि बोलि अपनी भगति को खोलै।। तेराजन....
बोलत बोलत बढ़ै वियाधी, बोल बोल को खाई।।
बोलै ज्ञान मान परि बोलै, बोलै बेद बढ़ाई।
उर मैं धरि धरि जब ही बोलै, तब ही मूल गवाँई।।
बोलि बोलि औरहि समझावै, तब लगि समझ न भाई।
बोलि बोलि समझी जब बूझी, काल सहित सब खाई।।
बोलै गुरु अरु बोलै चेला, बोल बोल की परतिति आई।
कह रैदास मगन भयो जबही, तबही परम निधि पाई।।

– भक्त रैदास

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या

(पिछले अंक से आगे)

14

यस्त्वामरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्ममन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्य न विद्यते। 3 ।17।

अर्थः– जो मनुष्य आत्मा में ही रमे, आत्मा में ही तृप्त है और आत्मा में ही संतुष्ट हो जाये उसके लिए कोई कर्तव्य नहीं रहता।

भावार्थः– केवल स्थितप्रज्ञ व्यक्ति जो आत्मिक रूप बन चुका है यानी सुरति की याद में पूर्ण आत्मिक आनन्द अवस्था में तृप्त और संतुष्ट है। जो धर्ममेध समाधि की अवस्था में है यानी सहज समाधि में है उसके लिए कोई कर्म (कर्तव्य) नहीं है।

15

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। 3 ।21।

अर्थः– ऐसा महापुरुष जो कुछ आचरण करता है या जीवन प्रमाण रखता है, सब लोग उसी का अनुकरण करते हैं।

भावार्थः– ऐसे धर्ममेध (सहज) समाधि वाले स्थितप्रज्ञ महात्मा का हर कार्य व जीवन में स्थापित मूल्य सबके लिए आदर्श बन जाते हैं। ऐसे ही व्यक्ति पीर, समर्थ गुरु व ब्रह्मलीन आत्मायें कहलाती हैं।

16

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्या कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमः प्रजाः। 3 ।24।

अर्थः– यदि मैं कर्म न करूं तो सारे लोक नष्ट हो जायें और संकरता का कारण बनकर प्रजा का विनाशी बनूँगा।

भावार्थः– उस परम परमात्मा ने यह विश्व क्यों बनाया? इसका उत्तर यहाँ है। हरेक को हर क्षण कर्म में लगाये रखने के लिए यह सब रचना चल रही है। यदि यह कर्म की अनुबद्धिता रुक जाये तो कर्म रहित अवस्था (जैसे लकड़ी) और कर्म की अधिकता (जैसे चलती आरी) के संकर (मिश्रण) से स्वयं विनाश हो जायेगा। वह हमको सर्वदा कर्म में लगा देखना चाहता है। जैसे मां अपने बच्चे को। वह उसे अधिक सोता हुआ देखकर चिंतित हो जाती है। कर्म में लगा देखना चाहती है।

17

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः। 3 ।42।

अर्थः– इन्द्रियाँ शरीर से अधिक श्रेष्ठ है, उनसे परे मन, मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे आत्मा है।

भावार्थः– यहाँ भगवान पंचकोषों का वर्णन कर रहे हैं। शरीर (अन्नमय) से ऊँचा (प्राणमय) इन्द्रियों के ज्ञान का, उससे अधिक सूक्ष्म और ऊँचा मन (मनोमय) का क्षेत्र है। उससे आगे बुद्धि (विज्ञानमय) और बुद्धि से आगे (आनन्दमय) आत्मा का क्षेत्र (कोष) है। हरेक का ज्ञान पिछले वाले से अधिक सूक्ष्म है।

18

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।

अर्थः– हे भारत! जब–जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है। तब–तब मैं इस (साकार) रूप में प्रकट होता हूँ।

भावार्थः– भगवान ने कहा कि जब–जब धर्म की हानि यानि पिछले स्थापित धर्मों के नियमों की अवहेलना होती है, तब–तब धर्म की नयी परिभाषा रचने के लिए स्वयं प्राकट्य रूप में अवतरित होता हूँ। जैसे युधिष्ठिर (धर्म के पुत्र) का धर्म था, दुष्ट तक को भी क्षमा कर देना (छोड़ देना) इसीलिए

जयद्रथ, द्रुर्योधन, दुश्शासन आदि सबको क्षमा करते रहे और सपरिवार स्वयं अनेकों कष्ट सहे। परन्तु धर्म की मर्यादा को इतना आगे ले जाने से पापी और उद्दंड हो जाता है और उसका पाप कम नहीं होता। अतः फिर पापी को दंडित (युद्ध द्वारा) करना ही उचित है। भगवान ने अनेकों में से एक इस सिद्धान्त को भी स्थापित किया है। पर कब दंड देना यह भगवान आज भी समाधि की ऊँची अवस्था में बताते हैं।

19

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
सः बुद्धिमान्मनुष्येशु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।

अर्थः– जो कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म देखे वो सब मनुष्य में बुद्धि मान है और वह योगी सब कर्मो का करने वाला है।

भावार्थः– सारे कर्मो यानी देखना, सुनना, छूना, सूंघना, भोजन करना, सोना, सांस लेना आदि सब में ये माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ केवल परमात्मा ही करता है। वह ही भृंगी साधन हो जायेगा। वही कर्म में अकर्म होगा और इन्द्रियों, मन, बुद्धि की आसक्ति को त्यागकर (अकर्म लेकर) आत्म शुद्धि के लिए कर्म करे। वो अकर्म में कर्म कहलायेगा। ऐसा करने वाले यानी निषेध कर्म (विकर्म) को न करें तो कर्म, अकर्म और विकर्म का उचित न्याय हो जायेगा।

20

त्यक्त्वा कर्मफलासंग नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति संः।

अर्थः– कर्म के फलों में आसक्ति त्यागकर संसार मुक्त (अनाश्रित) और परमात्मा में जो तृप्त है वह सब कर्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता।

भावार्थः– यहाँ तीन बातें मुख्य हैं। कर्म, फल, आसक्ति, का त्याग, संसार की चिंता न करना (मुक्ति) और परमात्मा में निरन्तर लीन रहना। जो इन तीनों को रखेगा वह सारे कर्म करते हुए भी कुछ नहीं करता। उसे किसी भी कर्म के फल का भागी नहीं बनना पड़ता।

21

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुहवति।
शब्दादीन्विशश्यानन्य इन्द्रियाग्निषु जुहवति। 4 ।26।

अर्थः– अन्य व्यक्ति श्रवण आदि इन्द्रियों का संयम करते हैं और कुछ शब्दादि को इन्द्रियों की अग्नि में लगाते हैं।

भावार्थः– यहाँ भगवान शब्द योग की क्रिया को बता रहे हैं कि कुछ योगी वर्णनात्मक शब्दों (चक्रों वाले) पर इन्द्रियों द्वारा संयम करते हैं। और कुछ ध्वनयात्मक ऊँचे शब्दों (प्रणव) में अपने मन को लगाते हैं। इसी प्रकार अन्य योग के प्रकार जैसे देव यज्ञ, संयम योग, तप, प्राणायाम योग तथा शब्द ब्रह्म का उपाय भी बताते हैं।

22

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्व ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि। 4 ।36।

अर्थः– यदि तुम पापियों में से भी सर्वाधिक पापी हो तो भी ज्ञान की नौका से सम्पूर्ण पापों के समुद्र से तर जाओगे।

भावार्थः– भगवान की आत्म ज्ञान को सर्वोच्च साधन की घोषणा इसमें है कि आत्म ज्ञान से सबसे घोर पापी भी तर जायेगा। कोई अपने आप को पापी समझ का साधना (आत्म ज्ञान की) न करे कि मेरा तो कुछ भला हो ही नहीं सकता, बिल्कुल गलत होगा। अतः ये भ्रम कि स्त्रियों के लिए या शूद्रों के लिए या जघन्य कर्म करने वालों के लिए आत्मज्ञान है ही नहीं – ऐसा बिल्कुल नहीं है।

23

यथेधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा। 4 ।37।

अर्थः– हे अर्जुन! ज्ञान (आत्म) सर्म्पूण कर्मों को ऐसे भस्म करता है जैसे अग्नि समिधा को।

भावार्थः– अर्जुन के सीधे प्रश्न कि यदि ज्ञान (आत्म) श्रेष्ठ है तो मुझे इस घोर कर्म में क्यों लगाने को कहते हैं ? का उत्तर प्रभु इस श्लोक में समाप्त करते हैं कि आत्म ज्ञान हो जाने पर कर्म और कर्मफल स्वयं समिधा की तरह ज्ञान रूपी अग्नि में भस्म हो जाते हैं। अतः आत्म ज्ञान श्रेष्ठ है।

24

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः। 4 ।40।

अर्थः– अज्ञानी, श्रद्धारहित, संशययुक्त व्यक्ति विनाश को प्राप्त होता है। संशयी के लिए न इस लोक में न परलोक में सुख है।

भावार्थः– आध्यात्म के मर्म को न जानने वाला अज्ञानी, इस मार्ग और गुरु में पूर्ण श्रद्धा न रखने वाला और शक्की (संशयी) मन सर्वदा विचलित रहेगा। और इसलिए वह व्यभिचारिणी भक्ति (आज यह तो कल वह) करने वाला स्वयं का विनाशी कहीं भी और किसी भी सुख व शांति को नहीं पाता।

25

नकर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते। 5 ।14।

अर्थः– प्रभु लोगों के न कर्तापन, न कर्मों की, न कर्मफल के संयोग की रचना करते हैं बल्कि स्वभाव वश सब कुछ होता है।

भावार्थः– यहाँ दृष्टामार्ग का उल्लेख है। यह जगत की रचना हम कर्म के फल को भोगने पर आधारित मानते हैं किन्तु यह केवल परमात्मा स्वभाव वश सब चला रहे हैं। यदि ऐसा विश्वास करके केवल दृष्टा बनकर कर्म करते रहें तो अत्यंत शांति मिलेगी और कर्म व कर्म के फल की उलझनों से बच जायेंगे।

26

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चवान्तरे भ्रुवोंः।
प्रणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ। 5 ।27।

अर्थः– बाह्य स्पर्शादि इन्द्रियों को बाहर करके नेत्रों की दृष्टि को भृकुटि के मध्य में करके अंदर आने व बाहर जाने वाले प्राण को सम करके ध्यान करें।

भावार्थः– यहां भगवान ने भृकुटि ध्यान बताया है कि इन्द्रियों को बाहर रोकर श्वास अधिक तीव्र या धीमे न करके (सम करके) भृकुटि के मध्य में आंतरिक दृष्टि को केन्द्रित करें। यदि इसी ध्यान में इच्छा, भय, क्रोध को त्यागकर शरीर को छोड़े तो मुक्ति प्राप्त होती है। यह ध्यान इतना उच्च है कि जीवन त्यागने के समय पर भी करने को बताया है।

सुविचारणा

गुरु के रहते भी साधक (सालिक) गिरता है और वे उठाते हैं, जैसे कि साइकिल सिखलाने वाला साथ भी रहे तो अभ्यासी गिर-गिर पड़ता है। परन्तु एक समय वह भी आता है कि वह सन्तुलन को समझकर गीत गाता हुआ हाथ छोड़कर साइकिल चलाता है। यहाँ तक कि चाहे दूसरों को भी सिखला सकता है। इसलिए श्रुति भगवती कहती हैः उठो और जागो तथा बड़ों के समीप जाकर उस सूक्ष्म रहस्य को समझो। अपने स्वरूप की जिज्ञासा पर समाधान का चिन्तन और गुरुपदिष्ट रीति से मनन ही ज्ञान की दूसरी 'सुविचारणा' भूमिका कही जाती है। इस मंज़िल पर पहुँच कर साधक के ज्ञान की आँखें खुल जाती हैं और वह प्रयास की प्रबलता का महत्व समझने लगता है। मुहब्बत की राह में तेज़ी से कदम उठा कर चल पड़ता है और भावी मंज़िलों के लिये वह कटिबद्ध होकर अगली मंज़िल के लिये सर्वथा प्रस्तुत हो जाता है। यह है सुविचारणा।

प्रवचन गुरुदेवः डा. श्रीकृष्ण लालजी महाराज

ईश्वर से क्या माँगें और क्या न माँगें। ईश्वर की इच्छा में प्रसन्न रहें।

(पिछले अंक से आगे)

दुनियाँ में तरक्की तो हम कर रहे हैं कि हम बैरिस्टर हो गये या किसी ऊँचे पद पर नौकर हो गये, और इच्छा यह है कि आगे और उन्नति करें, इसके लिए कोई और पढ़ाई या course करना है जिसके वास्ते कालेज में नाम लिखा लिया है, और ईश्वर ने जो तुमको रुपया या वेतन दिया है, उसमें से ज्यादा हिस्सा वहाँ उस पढ़ाई में खर्च होता है तो असन्तोष कैसा? अपना भविष्य बनाने के लिए अगर रुपया दूसरी तरफ़ खर्च कर रहे हो और घर में तंगी हो रही है तो इसमें परेशान हैं। ये तुम्हारी बेवकूफी है या नहीं। भाई अपने भविष्य को बनाने के लिए ही ईश्वर ने तुम्हें वह हज़ार रुपयों की नौकरी दे रखी है और तुम चाहते हो कि मैं दो हज़ार कमाऊँ, और अपना भविष्य बनाने के लिए उसमें पाँच सौ रुपये खर्च कर देते हो। तो पाँच सौ रुपयों में गुज़ारा करने में आपको क्यों बुरा लगता है। ये तो होना ही चाहिए। आप अपनी तरक्की के लिए ही तो कर रहे हैं। आप अपनी आवश्यकताओं को क्यों बढ़ाते चले जा रहे हैं। हाँलाकि वेतन काफ़ी मिल रहा है और आप हमेशा रोते रहें, तो ऐसा आदमी क्या तरक्की कर सकता है।

हमने एक साहब को देखा जो केवल इन्टर या हाई स्कूल पास हैं। इस वक्त में सात सौ रुपये महीने पा रहे हैं। वे, पत्नी और एक बच्चा इतना परिवार है। आज आठ बरस हो गये, हमें उनसे मुहब्बत भी है, मगर आज तक जितनी चिठ्ठियाँ आती हैं उनमें यही रोना होता है कि हाय! भाई साहब, मेरा गुजारा ही नहीं होता, मैं तो मरा जाता हूँ। अब बतलाइये कि क्या तुम्हीं रह गये हो कि ईश्वर सारी दुनियाँ भर का धन तुम्हीं को दे दे। अँग्रेजी तुमको लिखनी नहीं आती। हाई स्कूल पास लड़के

क्या अंग्रेजी लिख सकते हैं, मामूली अंग्रेजी लिख पाते हैं। कोई ख़ास तुममें लियाकत नहीं। कितनी बड़ी ईश्वर की कृपा है कि तुम्हें गज़टेड आफिसर बना दिया और सात सौ या आठ सौ रुपये तनख्वाह मिलती है लेकिन contentment (सन्तोष) नहीं है। जिनमें contentment नहीं है, ईश्वर उन्हें भले ही सब कुछ दे दे लेकिन वे तो हमेशा उसकी शिकायत ही करते रहते हैं। ऐसा व्यक्ति क्या परमार्थ पर चल सकता है? कभी नहीं।

पहली चीज़ यह कि सन्तोष होना चाहिए, जिस हालत में हो उसी में खुश रहो, इसी में तुम्हारा भला है। अगर तरक्की करना चाहते हो और दूसरों को देखकर तुम्हारी भी तबियत करती है कि तुम भी रुपया पैसा, शोहरत पैदा करो, तरक्की करो तो कोशिश करो मगर सहारा ईश्वर का लो। अगर कामयाबी हो जाती है तो उसको धन्यवाद दो, 'हे ईश्वर! तेरी बड़ी कृपा है' और अगर नहीं होती है तो भी धन्यवाद दो– 'हे ईश्वर! बड़ी कृपा है, न मालूम इस जगह पर पहुँच कर मुझे कितनी मुसीबत उठानी पड़ती। आपने बड़ी कृपा की जो मुझे सफलता नहीं दी। इस तरह से कितना satisfaction (उपरामता) आपको हो जायेगा। लेकिन हम अपने आपको कर्त्ता समझ कर जब कामयाबी नहीं होती है तो अपने को दोष देते हैं, या तक़दीर को या ईश्वर को। तो जिस आदमी के मन में असन्तोष है क्या वह कभी सुखी रह सकता है? कभी नहीं। कितने ही circumstances (हालात) बदल जायें, दुनियाँ की कितनी ही चीज़ें उसे मिल जायें लेकिन उसकी कभी भी तृप्ति नहीं होगी। satisfaction (तृप्ति) दुनियाँ की चीजों में नहीं है, वह तो अपने दिल में है। एक व्यक्ति को पचास रुपये महीने मिलते हैं, वह फिर भी satisfied है, एक को पाँच सौ रुपये महीने मिलते हैं, वह फिर भी satisfied नहीं है। यह मन की बीमारी है। इस बीमारी को दूर करो। जिस हालत में ईश्वर ने रखा है उसमें खुश रहो, तभी तरक्की कर सकते हों मन के स्थान से ऊपर उठकर आत्मा के स्थान पर आ सकते हो। और जो व्यक्ति इन्द्रियभोग में फँसा है, हर वक्त उसी के विचार में फँसा है, उसी की जुगाली करता है, will he ever be a learned man (क्या वह कभी विद्वान बन सकता है)? कभी नहीं। उसकी तो सुरत निचली वासनाओं में जकड़ी हुई है– दिन और

रात उसी को सोचता रहता है, विषय भोग का आनन्द लेता है और बाकी वक्त में उसी को सोचता रहता है। ऐसा आदमी तो मनुष्य की हैसियत से पशु रूप में गिरता चला जाता है। अगर मनुष्य जीवन में उसकी यह हविस पूरी नहीं हुई और निचली वासनाओं में फँसता गया तो ख्वाहिश तो उसकी पूरी होगी लेकिन किसी निकृष्ट योनि में। वहाँ जाओ ओर उसको भोगो। वहाँ से जब उसकी तृप्ति हो चुकेगी तब फिर मनुष्य चोला मिलेगा। उसी तरह मन की चाहों में बहने वालों का हाल है। सौदागर पेशा लोग तो हर चीज़ की नई से नई डिजाइनें लाकर रखते हैं। बाज़ार गये, उस पर निगाह पड़ी– लेने गये थे सब्ज़ी लेकिन अपने मन को रोक न सके और सुन्दर सा लैम्प जो दुकान में देखा, मन मोहित हो गया, सब्ज़ी भूल गये और लैम्प ले आये। घर में पहले से ही लैम्प मौजूद है, लेकिन आर्कषण–वश दूसरा और ले आये। दूसरी बार सब्ज़ी लेने गये तो एक और अच्छा सा नमूना लैम्प का देखा तो उसे भी ख़रीद लाये। यह सब अनावश्यक खर्च किया और फिर रोते हैं कि हाय, हमारा ख़र्च पूरा नहीं होता। इसका जिम्मेदार क्या ईश्वर है ? इसके जिम्मेदार तो तुम खुद हो। हमारे गुरुदेव एक दिन कहने लगे– ''श्रीकृष्ण, देखो तुम्हें एक गुर बताते हैं, अगर तुम दुनियाँ में खुश रहना चाहते हो तो अपनी इच्छाओं को कम करते चले जाओ। अगर एक जूता या दो जूते मौजूद हैं तो तीसरा कभी मत खरीदो। अगर दो तीन सेट जूते मौजूद हैं, चौथा पाँचवा कभी मत बनवाओ। तुम खुद भी खुश रहोगे। और जो तुमने अपनी इच्छाओं को बढ़ाकर अपनी ज़िन्दगी ख़र्चीली बना ली तो खुद भी दुखी रहोगे और सारे परिवार को दुखी रखोगे, उनकी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकोगे।'' दूसरी नसीहत उन्होंने यह दी कि जो व्यक्ति तुमसे नसीहत न माँगे, कभी उसको नसीहत मत दो। ज़ाहिरदारी में यह ग़लत सा मालूम देता है। शेख़ सादी कहते हैं–

अगर बीना कि नाबीना व चाह अस्त,
बगर ख़ामोश बिनशीनम गुनाह अस्त।

भावार्थः– अगर देखे कि अन्धा जा रहा है और सामने कुआँ है तो चुप रहना न बताना पाप है।

मगर गुरुदेव (आचार्य दिगन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज) ने इसके विपरीत कहा है और हमने उसको आजमाया है और बिल्कुल ठीक पाया है। आप ज़बरदस्ती किसी की भलाई के लिए कुछ कहिए तो वह उसे नहीं मानेगा बल्कि उसके ख़िलाफ़ चलेगा और अपना नुक़सान करेगा। जब वह आप से राय माँगे और आप उसे राय देंगे तब उसे वह मानेगा और उसकी क़द्र भी करेगा। चाहे बेटा भी हो, इशारा दे दें, कभी वितबम (जब्र) न करें वर्ना वह कभी वैसा नहीं कर सकेगा। यह दुनियाँ का एक अज़ीब क़ायदा है कि आप बड़ी मुहब्बत से, उसकी भलाई के लिए किसी को कोई चीज़ बतलायें मगर वह यह समझता है कि इन्हें क्या पड़ी है, ज़रूर इनका कोई न कोई मतलब है जो ये ऐसी बात कर रहे हैं क्योंकि दुनियाँ में सब मतलब से काम करते हैं। आप कितना भी निस्वार्थ होकर उसे समझायें लेकिन वह यही समझेगा कि इसमें तो मेरा बहुत नुकसान है। ख़ैर, यह मेरा तर्जुबा है। आप चाहें तो इसका तर्जुबा करके देख लें। लेकिन यह तो खुला हुआ तर्जुबा है कि जितनी आप अपनी ज़िन्दगी ख़र्चीली बनायेंगे, उतने ही आप दुखी रहेंगे।

आजकल मँहगाई बहुत है और हर आदमी उससे तंग है लेकिन आप अपने अन्दर से सोचकर देखिए कि क्या हम भी इसके जिम्मेदार नहीं है। हमने भी अपने जीवन को खर्चीला बना लिया है। हम यह चाहते हैं कि जिन चीज़ों की ज़रूरत नहीं है, घर में मौजूद हैं, उनका भी अम्बार लगा रहे हैं। Luxuries (विलास की वस्तुयें) necessities (प्रतिदिन की आवश्यक वस्तुयें) में तब्दील होती चली जा रही हैं। जहाँ यह हाल है वहाँ मँहगाई तो बढ़ेगी ही। हम इनके बिना रह नहीं सकते। खर्च अपने आप बढ़ता है और हम तंग होते हैं। तो फिर बनतेम (भला बुरा कहना, धिक्कारना) करते हैं। बनतेम किसको करते हैं? अपने आपको नहीं। बेचारा ईश्वर इस काम के लिये रह गया।

अपनी आँख का तिल तो नहीं दीखता और दूसरे की आँख में गिरा हुआ छोटा सा तिनका भी दीख जाता है। अपना नुक़्स किसी को नहीं दीखता, दूसरे का छोटा सा दोष भी फ़ौरन दीख जाता है। यह मनुष्य का स्वभाव है। ईश्वर में भी दोष देखते हैं। उसे अन्यायी बताते हैं। कैसे आश्चर्य की बात है। ईश्वर तो सम्पूर्ण न्याय है, और यही नहीं वह तो

बड़ा प्यारा बाप है, बड़ा दयालु है। अगर हमारे कर्मों को देखकर कि हम क्या–क्या कुकर्म कर रहे हैं, वह हमें सजा दे तो क्या हम दुनियाँ में रहने लायक़ हैं ? न जाने हमारी क्या दुर्दशा हो। वह माफ़ करता चला जाता है और हम हैं कि उसी को दोषी ठहराते चले जाते हैं। अपने आपको और अपने कर्मों को दोषी नहीं ठहराते। यह miserable (हीन) हालत सब तुम्हारे कर्मों का नतीज़ा है। जितना किया है उतना तुम्हें मिल रहा है। कोई चीज़ इस दुनियाँ में ऐसी नहीं है जो बिना कीमत के मिल जाये। जितनी कीमत देते जाओगे, चीज़ मिलती जायेगी। कीमत तो देना नहीं चाहते और यह चाहो कि सारी दुनियाँ तुमको मिल जाये। ऐसा तो नहीं होता। वह तो just (न्यायकारी) है, जितना तुमने किया है, उतना तुम्हें मिल रहा है। यह सब तुम्हारे ही कर्मों का फल है। चाहे अच्छे हैं या बुरे। उसको हमें सब्र से बर्दाश्त करना चाहिए। तभी आपका मन मुक्त होने लगेगा और आत्मा का अनुभव कर सकेगा।

माया ने यह शरीर बनाया, इन्द्रियाँ व मन बना दिया। यह सब मिट्टी की बनी हुई हैं। जितनी भौतिक चीज़ें हैं वे भी मिट्टी की बनी हैं, उन पर मुलम्मा चढ़ा है (वे आकर्षक हैं) और उन्हीं की वासनायें हमारे अन्दर भर दी हैं। उन वासनाओं को पूरा करने के लिए हम उन चीजों से attach (लिप्त) हो जाते हैं। यही मन और माया का जाल है। आत्मा का किसी को पता भी नहीं। वह अन्दर दबी पड़ी है, इसलिए अगर हमें सब material (भौतिक) चीजें मिल भी जायें फिर भी हम सुखी नहीं रह सकते क्योंकि आत्मा हमारी अशान्त है, उसको जगाओ। वासनाओं को उतना भोगो जितना जितना जरूरी है। यह नहीं कि उनको छोड़ दो क्योंकि जब तक नहीं भोगोगे तब तक मन वहीं लगा रहेगा। लेकिन इसका यह भी मतलब नहीं है कि उसी में फँसे रहो, उन्हें धर्मशास्त्र के अनुसार भोगो। इस तरह भोगने में भोग भी लेंगे और इन्द्रियों की तृप्ति भी हो जायेगी। जैसे sex की urge (काम–वासना) है, सब इसमें फँसे हुए हैं लेकिन इसका proper use (सही इस्तेमाल) क्या है ? – आपकी स्त्री, उसको भी धर्मशास्त्र के अनुसार भोगो। इस तरह भोग भी लोगे और तृप्ति भी हो जायेगी। अगर आपने उसको अधर्म के साथ भोगा, एक शादी की, दूसरी की, फिर तीसरी की, तो यह ख़्वाहिश और बढ़ती चली जायेगी। मन जिस

चीज़ को ज़्यादा भोगता है उससे वहाँ उसकी जड़ मज़बूत होती चली जाती है। अधर्म से भोगने में उस चीज़ का ऐसा आदी (अभ्यस्त) हो जायेगा कि जानवर की दशा में चला जायेगा। तो भोगा भी नहीं यानी भोग की तृप्ति भी नहीं हुई और तबाह हो गया। धर्म के अनुसार भोगने से आप उस भोग से उपराम हो जायेंगे और आपकी attention (सुरत) नीचे से free (मुक्त) हो जायेगी। तब आप मन के स्थान से उठकर आत्मा के स्थान पर आ सकते हैं। ईश्वर आपका कल्याण करे।

(सन्त वचन–भाग 7 से लिया गया।) (दि. 10. 5. 1969)

समाधानः जानने में नहीं, आचरण में है

भगवान बुद्ध एक बार विहार करते–करते राजगृही नगरी में आये। उनके दर्शन करने तथा उपदेश सुनने के लिए बहुत लोग वहाँ आये। उपदेश समाप्त होने पर सभी लोग आनन्द का अनुभव करते हुए अपने–अपने घर लौट गए। केवल एक व्यक्ति वहाँ बैठा रहा। उसे देखकर उन्होंने उसे अपने समीप बुलाया। वह समीप आया तो उन्होंने पूछा–''कैसे ठहर गये ? कुछ कहना चाहते हो ?''वह बोला, ''जीवन मुक्ति का सच्चा साधन क्या है ?''गौतम बुद्ध ने बताया–''जीवन मुक्ति के लिए हमारा जीवन निर्दोष बनना चाहिए। हमारे जीवन में उदारता आनी चाहिए। जगत के समस्त प्राणियों के प्रति हमारे हृदय में समभाव होना चाहिए तथा हमें सत्य का उपासक होना चाहिए''। ऐसा लगा जैसे वह व्यक्ति भगवान बुद्ध के उत्तर से संतुष्ट नहीं हुआ। उसने कहा–''भगवान! आपने जो कुछ कहा उसमें कोई नई बात तो नहीं है। ये बातें तो सभी कहते हैं, सभी जानते हैं। एक बालक भी जानता है। तब गौतम बुद्ध ने कहा–''जानना और जाने हुए पर आचरण करना भिन्न–भिन्न बातें हैं। केवल जान लेने से तो कुछ नहीं होता, जानी हुई बात पर आचरण भी करना चाहिए। तुम स्वयं को ही देखकर कहो कि जो बातें तुमने जानी हैं, उन पर तुमने कभी आचरण भी किया है और किया तो कितना किया है ?'' वह व्यक्ति क्षण भर मौन रहा, फिर उसने कहा–''नहीं भगवन्! वैसा आचरण तो नहीं किया।'' ''तो आज से ही, इसी समय से, वैसा आचरण आरम्भ कर दो। तुम्हारे सारे प्रश्नों का समाधान स्वतः ही होने लगेगा।'' गौतम बुद्ध ने कहा और अपने नेत्र बन्द करके ध्यान मग्न हो गये।

परमसंत डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के अनमोल वचन

साधन

परमात्मा को प्राप्त करने के लिए जब तक अपनी जान तक न्योछावर नहीं कर देगा तब तक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होगी। जान का न्योछावर करना क्या है ? जीते जी मर जाना। परमात्मा के प्रेम के अतिरिक्त अपने मन में कोई दूसरी इच्छा शेष न रखें। जब इन बातों पर अमल करेगा तो सफलता मिलती जायेगी। मीरा कहती हैं–

''सूली ऊपर सेज पिया की, किस विधि मिलना होय।''

बिना सूली पर चढ़े पिया की सेज नहीं मिलती।

❖❖❖❖❖

तीन बातें करते रहो 1) अभ्यास 2) परमात्मा से लौ लगाये रहो और 3) समय कितना भी लगे इसका ख़्याल मत करो। धीरे–धीरे मन को समझा बुझा कर आहिस्ता–आहिस्ता नियंत्रण में लाओ। अगर नहीं मानता तो लड़ो मत वर्ना समय व्यर्थ जायेगा। सन्तों का तरीक़ा राज़ी–ब–रज़ा का है। हठयोग का नहीं, राजयोग का है।

❖❖❖❖❖

कोई चीज़ मुफ्त नहीं मिलती, कीमत देनी पड़ती है। जो चीज़ जितनी मँहगी है उतनी ज़्यादा उसकी कीमत देनी पड़ती है। अगर ईश्वर को चाहते हो, हमेशा–हमेशा का आनन्द और सुख चाहते हो तो जान की बाज़ी लगानी पड़ेगी। कीमत क्या है ? अपने अरमानों का खून कर दो, इच्छा रहित हो जाओ और अपने आपको पूरी तरह समर्पण कर दो। इसका भेद सन्तों की सोहबत (सत्संग) में मिलेगा।

❖❖❖❖❖

तदबीर (उपाय, पुरुषार्थ) के ज़रिये (द्वारा) इन्सान अपनी तक़दीर को बदल सकता है। जिन बातों को वह अपनी पिछली जिन्दगी में पूरी

तरह हासिल न कर सका, वे इस जिन्दगी में ज़रा सी कोशिश करने से हासिल हो सकती हैं। जतन और जुस्तजू (पुरुषार्थ) चाहिए।

❖❖❖❖❖

अहं को दीनता में बदल दो। इससे मन का मान घटता जाता है। अपने आपको दुनियाँ का सेवक समझो, सब में ईश्वर का रूप देखो, इससे दीनता आती है।

❖❖❖❖❖

सन्तमत में प्रेम मार्ग को लेते हैं और किसी ऐसे महापुरुष को, जिसने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया हो, गुरु धारण करते हैं। इन स्थूल आँखों ने जिसे कभी देखा नहीं बुद्धि जिसे समझती नहीं, जन्म-जन्मान्तर से जिसे स्थूल का ही ख़्याल करने की आदत है, वह निर्गुण का ध्यान कैसे करे? जब तक हम ईश्वर गति पर न पहुँचे उससे प्रीत कैसे करें? इसलिए पहले ऐसे महापुरुष से प्रेम करते हैं जो ईश्वर के दर्शन प्राप्त कर चुका हो और शरीरधारी हो। 'गुरु' शब्द का अर्थ है जो अंधेरे से निकालकर रोशनी में ले जाये। शरीर से वह सांसारिक व्यवहार करता है और आत्मा से वह ईश्वर में लय है। जिस्म से हम उससे बोल और बातचीत कर सकते हैं। इस तरह से उससे सत्संग करते हुए और उससे प्रेम करते हुए हम अन्धकार से रोशनी की तरफ चलते हैं।

सन्तमत प्रेम का मार्ग है। अगर शिष्य को गुरु की सोहबत बराबर मिलती रहती है और उनकी सेवा में बराबर आता रहता है, तो जल्दी तरक्क़ी होती है। सबसे आसान यही रास्ता है, मगर शर्त यह है कि बराबर गुरु से सम्पर्क बनाये रहे।

❖❖❖❖❖

मज़हब का ख़्याल छोड़ दो। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई वग़ैरा के चक्कर में मत पड़ो। यह सब रास्ते की बाधायें हैं। हमारा प्रीतम तो ईश्वर है। उस तक पहुँचने के लिए हमें रास्ते में कुछ भी करना पड़े, वह भी मंजूर है।

❖❖❖❖❖

सबकी सेवा ईश्वर का रूप जानकर करो। यह दुनिया उसका विराट रूप है। बिना किसी distinction (भेदभाव) के सबकी सेवा अपना फ़र्ज समझ कर करो। अगर कोई बुराई करता है तो सोचो कि यह बुराई करता है तो भी मेरे लिए अच्छाई है। क्या ईश्वर की मर्जी के बिना पत्ता भी हिलता है? कितनी मेहरबानी है उस ईश्वर की कि उसकी बुराई से तुम्हारा संस्कार कट गया और बुराई दूसरे को मिल गई। निगाह (दृष्टिकोण) बदल दो। जो चीज़ें तुम्हें बन्धन में डाल रही हैं उन्हें छोड़ दो। एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम सब कुछ छोड़कर उसके बन जाओगे और वह तुम्हें अपनायेगा। उस वक्त तुम dearest son of God (ईश्वर के सबसे प्यारे बेटे) हो जाओगे ।झपदह व ापदहे (बादशाहों के बादशाह) बन जाओगे। तमाम दुनियाँ की शक्तियाँ तुम्हारे आगे हाथ बाँधे खड़ी रहेंगी। मरते वक़्त आज़ादी से जाओगे, महापुरुषों की पवित्र रूहें लेने आयेंगीं, हँसते हुए जाओगे।

❖❖❖❖❖

असली आंनद आत्मा में है। जिस बाहरी चीज़ पर उसका अक्स पड़ता है मन और ईन्द्रियाँ उसी में आनंद लेने लगती हैं। लेकिन आत्मा पर जन्म जन्मांतर से भले बुरे संस्कारों के गिलाफ़ चढ़े हुए हैं, वह दबी हुई है। उसे उभारो। इसके लिये आत्मा को ग़िज़ा की ज़रूरत है। आत्मा पूर्ण ज्ञान, और पूर्ण सत्य है। धार्मिक पुस्तकों के पढ़ने से, संतो ंके सत्संग से और उनके उपदेशों पर चलने से आत्मा का ज्ञान प्राप्त होता है। सच बोलने, अच्छे काम करने, अच्छे विचार रखने से आत्मा को ग़िज़ा मिलती है। दान करना, दया करना, किसी का दिल न दुखाना, इन सब बातों से आत्मा को बल मिलता है। आत्म ज्ञान की प्राप्ति ही ईश्वर की प्राप्ति है। यही अंसान की ज़िन्दगी का लक्ष्य है। इस लिये जब तक उसकी प्राप्ति न हो, बराबर आगे बढ़ते रहो। ईश्वर तुम्हारे अंदर है। उसे प्रेम से बुलाओ। वह ज़रूर आयेगा।

❑

प्रवचनः परमसंत डा.करतार सिंह जी साहब की

मौन साधना क्या है

आदि काल से जितने भी धर्म हुए हैं, जितनी भी महापुरुषों ने पद्धतियाँ अपनाने का आदेश दिया है, प्रायः उन सबका अंतिम चरण मौन है। प्रभु सत्य है। मौन साधना द्वारा हम उसी सत्स्वरूप परमात्मा को अवसर देते हैं कि वह हमारे राम–रोम में प्रवेश कर जाये अर्थात् हमारी समीपता और संयोग उस परमात्मा के साथ हो जाये।

प्रगाढ़ निद्रा या सुषुप्ति में हमारा शरीर निष्क्रिय रहता है, मन की चंचलता या संकल्प–विकल्प नहीं रहते, बुद्धि द्वन्दों से रहित, मुक्त होती है। प्रगाढ़ निद्रा जैसी स्थिति ही मौन का प्रथम चरण है।

सरल और सहज साधन में निश्चल शरीर, शांत मन और स्थिर बुद्धि से बैठने से हल्केपन की ऐसी स्थिति आ जायेगी, मानो कोई कपड़ा खूंटी पर टँगा हो–वह अपने बल पर नहीं खड़ा होता है। ऐसी स्थिति में परमात्मा की कृपा की वृष्टि का भान होता है। इस वृष्टि से हमारा शरीर, मन व आत्मा सम रस हो जाते हैं। ईश्वर तो अनन्त आनन्द स्वरूप है, हमारी दशा भी आनन्द रूप हो जायेगी। पर सामान्यतः ऐसे आनन्द की अनुभूति क्यों नहीं होती? इसका कारण मन की चंचलता है। बिना मन की चंचलता को त्यागे ईश्वर का सामीप्य नहीं मिल सकता।

वास्तव में हम अपने मन का संग करते हैं, परमात्मा या गुरु का, सत् का संग नहीं करते। गुरु के संग और प्रभु के संग में कोई विशेष अन्तर नहीं है। गुरु भी ईश्वर में लय होकर आपकी सेवा में बैठता है। वह कुछ नहीं करता। उसके शरीर के रोम–रोम द्वारा परम पिता परमात्मा के प्रेम की किरणें चारों ओर फैलती हैं।

गुरु न भी हो तब भी ईश्वर की कृपा सब पर हर समय एक जैसी बरसती है। अन्तर केवल यह है कि गुरु का शरीर साधना करते–करते

इतना निर्मल और संवेदनशील बन जाता है कि गुरु के शरीर के द्वारा परमात्मा की कृपा की किरण–रश्मियाँ जो आप तक पहुँचती हैं वे कुछ अधिक शक्ति अधिक तेज और वेग लिए हुई होती हैं। जैसे आतशी शीशे पर सूर्य की किरणें पड़ें तो उसके नीचे रखा काला कपड़ा जल उठता है।

गुरु है तो ठीक है, अच्छा है। यदि नहीं है तो आपका सीधा सम्पर्क प्रभु से हो सकता है। बस शर्त यह है कि व्यक्ति मन की चंचलता से मुक्त हो जाये और बुद्धि की चतुराई समाप्त हो जाये। इस स्थिति में परमात्मा के साथ समीपता प्रारम्भ हो जाती है। और इस कैफियत से आप में और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं रहेगा। पर यह काम जल्दी का नहीं, धैर्य का है। एक दिन में आत्मिक मौन में स्थिरता नहीं प्राप्त होती, समय लगता है। भले ही कई वर्ष लग जायें।

मौन की अवस्था को स्थिर बनाने के लिए उपासना का त्याग नहीं करना चाहिए। मौन की साधना के लिए पहले मन को कोमल बनाना, संवेदनशील बनाना है ताकि प्रभु की ओर से जो प्रसादी आ रही है उसे साधक ग्रहण कर सके। प्रभु के प्रति भक्ति, भावुकता और उपासना से बढ़ेगी। सबसे अधिक महत्व सेवा का है। शुभ कर्म मौन साधना में सहायक होते हैं।

उपासना के समय शुरु–शुरु में प्रभु की महिमा का गुणगान, स्तुति–वन्दना आदि करना, भजन व पुस्तकें पढ़ना सहायक होते हैं। भक्ति किसी भी तरह की, किसी भी भाव की हो, चाहे प्रेम भक्ति हो जैसी चैतन्य महाप्रभु करते थे। भक्ति–भाव में नृत्य गान करते–करते इतने विभोर हो जाते थे कि उनका तन–मन और समस्त चेतना भगवान से तद्रूप हो जाती थी, ईश्वरमयी बन जाती थी। भक्ति की चरम–सीमा या परिणति आत्मा के 'मौन' की दशा ही है।

ध्यान में बैठते समय मन चंचलता करेगा, बुद्धि भी तर्क–वितर्क करेगी। इनसे मुक्त होने के लिए या तो प्रेम–भक्ति का सहारा लें या ज्ञान–

साधना का। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो आपका न तो मौन स्थिर हो पायेगा न ही आनन्द की अनुभूति होगी।

मौन–साधना के समय कुछ सावधानियाँ बरतनी आवश्यक हैं। जब मन में क्रोध हो, किसी के प्रति शत्रुता या बदले की भावना हो, कोई बुरे विचार आ रहे हों या हीन भावना सता रही हो तो मौन का अभ्यास न करें क्योंकि ऐसा करने से इन बुराईयों को दृढ़ता मिलेगी। जब तक मन निर्मल न हो जाये, हर प्रकार के विकारों से मुक्त न हो जाये, मौन साधना नहीं करनी चाहिए।

इसी प्रकार मौन साधना करने के पश्चात् तुरन्त ही दुनिया के कामों में नहीं लगना चाहिए। पाँच–दस मिनट एकान्त में रहें। लोग साधना समाप्त होते ही बातों में लग जाते हैं। परिणाम यह होता है कि जो कुछ प्राप्ति हुई होती है, वह समाप्त हो जाती है।

मौन साधना में बैठने से पूर्व हम अधिकारी बनें। जब तक अधिकार नहीं बनता, भजन पढ़िये भक्ति करिये, संतों की अमृत बानी पढ़ें। सेवा करें और अपनी बुराईयों को छोड़े, जब योग्य बन जायें तब इस मौन साधना का श्री गणेश करें। इसी मौन–साधना द्वारा ही आत्मा के दर्शन और परमात्मा से तद्रूपता प्राप्त हो पायेगी। इसी कैफ़ियत के लिए ही हमारी प्रार्थना में ''ओ3म् सहनाववतु'' वाला मंत्र शामिल किया गया है जिसमें गुरु और शिष्य की साथ–साथ परम पिता परमेश्वर से विनती की गई है कि– 'दोनों की साथ–साथ रक्षा व पालन हों, साथ–साथ ही शक्ति प्राप्त करें, तेजोमयी विद्या पायें। और अन्ततः अपनी दुई मिटाकर, स्नेह सूत्र में बंधकर एक हो जायें एवं परम लय अवस्था को प्राप्त करें।'

इस मौन–साधना में कोई आशा या इच्छा लेकर नहीं बैठना चाहिए कि हमें प्रकाश की झलक मिले या शब्द सुनाई दे या गुरुदेव के दर्शन हों अथवा सांसारिक सुख मिल जाये, सफलता मिल जाये आदि।

हमें तो मानो गंगा के प्रवाह में अपने आपको समर्पित कर देना है। प्रवाह जिधर भी ले जाये उसी के साथ–साथ बढ़े चलें, कोई अवरोध नहीं

करना चाहिए, कोई प्रयास नहीं करना है। इस प्रकार होना है जैसे कि कलाकार के हाथों में पत्थर अपने आपको समर्पित कर देता है एवं उसे कलाकार एक सुन्दर मूर्ति के रुप में ढाल देता है। साधक को स्वयं को भी इसी प्रकार उस महानतम कलाकार (परमात्मा) के हाथों में छोड़ देना चाहिए।

कुछ साधक केवल मौन साधना करते हैं किन्तु वे शिकायत करते हैं कि इसमें रूखापन रहता है, आनन्द नहीं आता। तो आनन्द नहीं आने का कारण पात्रता का न होना है। मौन–साधना की पात्रता हासिल करने के लिए एक सरल युक्ति का अभ्यास करना उपयोगी सिद्ध हो सकता है और वह युक्ति है कि प्रतिक्रिया करने की आदत का परित्याग करें। हम देखते हैं तो प्रतिक्रिया करते हैं, सुनते हैं तो प्रतिक्रिया करते हैं, खाने में रस आता है उसकी प्रतिक्रिया करते हैं, कुछ सूंघते हैं उसकी या कोई वस्तु छूते हैं तो प्रतिक्रियायें करते रहते हैं। मन में संकल्प–विकल्प उठते हैं तो प्रतिक्रिया करते हैं। जब तक इन प्रतिक्रियाओं का तांता नहीं टूटेगा, तब तक मौन साधन भी सधेगा नहीं।

इसी प्रकार कम बोलने का अभ्यास करने की भी आवश्यकता है। और कम बोलने में वही व्यक्ति सफल होगा जो प्रतिक्रिया की आदत को छोड़ देगा। विवेक तथा वैराग की साधना भी आवश्यक है।

महात्मा गौतम बुद्ध ने साढ़े छः वर्ष साधना की, उसके अंत में उन्होंने यह निर्णय दिया कि भीतर अथवा बाह्य में प्रतिक्रिया न हो। यह अच्छा है, वह बुरा है – अर्थात् जब तक विचार आते रहेंगे सफलता नहीं मिलेगी क्योंकि प्रत्येक विचार अपने आप भी एक प्रतिक्रिया है। इसीलिए उन्होंने विचारों से रहित होने का, शून्य होने का यह साधन बताया है कि हम प्रतिक्रिया की वृत्ति को छोड़ दें। बात बहुत छोटी सी लगती है परन्तु व्यवहार में बड़ी कठिनाई होगी। पर अभ्यास करने से यह आदत छूट जायेगी।

उपनिषद भी यही बताते हैं कि निर्द्वन्द अवस्था में स्थिर होना है।

आत्म–विकास तब ही होता है जब मन और बुद्धि दोनों स्थिर हो जाते हैं। आत्मिक मौन को ही वास्तविक मौन कहते हैं।

भक्त रैदास जी ने अपनी सुन्दर पदावली में अधिक बोलने का वर्णन करते हुए अन्त में यही तत्वज्ञान दिया है कि जब साधक 'मगन' अर्थात् मौन हो जाता है तभी उसे 'परमनिधि' प्राप्त हो पाती है। उन्हीं की अमृत वाणी में कैसा सदुपदेश भरा हैः–

'तेरा जन काहे को बोलै.....'

पूज्य गुरुदेव आप सब पर कृपा करें।

➢ ईश्वर प्राप्ति के अनकों मार्ग हैं ये सब उस प्रभु तक पहुँचा देते है। गीता त्याग सिखलाती है।

–स्वामी रामकृष्ण परमहंस

➢ उपनिष्द रुपी बगीचे से चयन किये हुए फूलों का एक गुछा है भगवदगीता।

–स्वामी विवेकानन्द

➢ मेरा शरीर जितना माँ के दूध से पला है उससे कहीं अधिक मेरे हृदय और बुद्धि का पोषण गीता के दूध पर हुआ है।

–विनोबा भावे

➢ मानव जीवन एक जीवन युद्ध है। युद्ध भी एक कला है। गीता इसी युद्ध कला को सिखलाती है और मनुष्य को आगे, उपर की ओर, ईश्वर की ओर ले जाती है।

– योगीराज घोष

❑❑❑❑

प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र

हबीब आज्वमी

तपस्वी हबीब आज्वम देश के वासी थे। अरब देश के बाहर के छोटे देश, विशेषतः ईरान और नूरान आज्वम कहलाते थे। वहाँ से वे बसरा शहर में जाकर रहने लगे थे। उनको हुए बारह सौ वर्ष बीत गये हैं। तपस्वी हुसैन के उपदेश ने उनका जीवन ही बदल दिया था। पहले वे बयाज पर पैसा उधार देने का धंधा किया करते थे। कई कर्ज लेने वालों को वे दुगने तिगुने का रुक्का लिखकर उधार दिया करते थे। एक बार वे अपने कर्जदार से रुपया वसूल करने के लिए गये। कर्जदार घर पर नहीं था, उसकी स्त्री थी। उन्हें आया देखकर स्त्री बोली– ''वो तो बाहर गये हैं, पर हमारे पास बयाज चुकाने के लिए कुछ भी नहीं है। सिर्फ इतनी सी सब्जी बची है। जरूरत हो तो बयाज के बदले लेते जाइये।'' हबीब उसे ही लेकर चले आये। उनकी स्त्री ने वही सब्जी पकाई। उस दिन नमक व अनाज भी बयाज के बदले में लाये हुए थे। खाना तैयार होने पर उनकी स्त्री ने उन्हें भोजन के लिए बुलाया। इतने में एक भिखारी आकर भीख के लिए पुकारने लगा। हबीब ने उसे धमकाकर कहा ''चल जा यहाँ से। तुझे कुछ भी नहीं मिलेगा।'' यह उत्तर सुनकर भिखारी लौट गया। हबीब खाने बैठे तो उन्हें थाली खून से भरी दिखाई दी। वह जान गये कि यह बयाज खोरी का ही नतीजा है और उससे हटाने के लिए ही ईश्वर की प्रेरणा है। इस्लाम धर्म में बयाज खोरी की सख़्त मनाही है। हबीब की आँखे खुल गईं। इस धंधे से हाथ हटाने के लिए वे अपनी पूँजी वापस इकठ्ठी करने के लिये निकले। उन्हें देखकर रास्ते में खेलते हुए लड़के बोल उठे– ''भागो भागो, सूदखोर हबीब आया, उसका पाँव पड़ने से धरती नापाक हो गई है।'' यह सुनकर हबीब के दिल में गहरा आघात हुआ और वे उदास मन से महात्मा हुसैन के पास चले गये।

महात्मा हुसैन के उपदेशों का भी उनके दिल पर पूरा असर नहीं हुआ। पश्चात्ताप करते–करते वे अपने घर लौट आये। रास्ते में उन्हें आता देखकर उनका एक कर्जदार एक कोने में छिप गया। हबीब ने पास जाकर उसे बुलाकर कहा– ''भाई, दरअसल तुम्हें नहीं मुझे तुम्हारे सामने से भाग जाना चाहिए था।'' इतना कहकर वे आगे बढ़े तो रास्ते में खेलते हुए वे लड़के अबकी बार आपस में बात कर रहे थे– ''आओ, आओ, देखो हबीब पछतावा करके पाक हो गया है। उससे अपना नापाक शरीर न छुआ देना, नहीं तो खुदा का गुनाह होगा।'' यह सुनकर हबीब मन ही मन बोले– ''हे प्रभु,! तेरी ओर अच्छे मनोभाव धारण करने पर एक ही दिन में लोगों के मन में मेरे प्रति कैसी अच्छी भावना हो गई।'' उसके बाद उन्होंने सारे गाँव में ढिंढोरा पिटवा दिया कि हबीब के कर्जदारों का कर्ज माफ़ कर दिया गया है, वे लोग आकर अपने–अपने खत वापस ले जायें। ढिंढोरा सुनकर सब कर्जदार चले आये, बिना एक पैसा लिए हबीब ने उन सब के खत फाड़ डाले। जो कुछ दौलत उनके पास थी वह भी उन्होंने गरीबों में बाँट दी। स्वयं अकिंचन बन गये। उसी समय एक भिखारी ने आकर उनसे भीख माँगी। हबीब के शरीर पर एक वस्त्र था। उन्होंने वही उस भिखारी को दे दिया। उसके बाद दूसरा भिक्षुक आया। उसे उन्होंने अपनी स्त्री के ओढ़ने का कपड़ा दे दिया। कोरात नदी के किनारे जाकर हबीब ने एक छोटी सी झोपड़ी बनाई और उसमें रहकर तप तथा साधना करने लगे। दिन में वे हुसैन बसराई के पास जाकर ज्ञान की चर्चा करते और रात्रि में भजन करते। इस प्रकार कुछ समय बीतने पर उनकी स्त्री अन्न बिना हैरान रहने लगी। उसने पति से पैसा माँगा तो उन्होंने कहा– ''मैं रोज काम करने जाता तो हूँ, मालिक जिस दिन तनख़्वाह देंगे उस दिन ले आऊँगा।'' अब तो वे राज दिन में एकान्त में जाकर उपासना करते और रात में लौटते। पत्नि पूछती – 'कुछ लाये' तो वे कहते – ''मेरा मालिक इतना बढ़ा दानी है कि उससे माँगते तो मुझे शर्म आती है, पर समय आने पर वह खुद देगा, उसने मुझसे दसवें दिन तनख़्वाह देने को

कहा था।'' नियमानुसार वे रात दिन ईश्वर भजन में लीन रहते। नौ दिन योंही बीत गये। दसवें दिन उन्हें चिंता हुई कि आज कुछ भी घर नहीं ले जाऊँगा तो औरत को क्या जवाब दूँगा। वे चिंता के मारे मुँह लटकाकर रह गये।

दोपहर में एक युवक खाने–पीने का बहुत सा सामान और तीन सौ मुद्राओं की एक थैली लेकर उनके घर पहुँचा। उनकी पत्नि को वह सब सामान सौंपकर उसने कहा – ''मेरे उदार मालिक ने यह सब चीजें भिजवाईं हैं और कहलवाया है कि ज्यों–ज्यों हबीब उनकी ज़्यादा सेवा करेगा त्यों–त्यों उसे ज़्यादा तनख़्वाह मिलेगी।'' इतना कहकर वह जवान वहाँ से चला गया।

संध्या होने पर हबीब सकुचाते हुए घर लौटे। विविध प्रकार के व्यंजनों की सुगन्धि से वे चकित हो गये। उनकी पत्नि ने आगे बढ़कर हँसते हुए कहा– ''ओ हो आपका मालिक तो बड़ा दयालु है। आज मेहरबानी करके उसी ने यह सब भेज दिया है और कहलवाया है कि खूब मन लगाकर चाकरी करते जाना। हबीब बोले – ''बड़े अचरज की बात है, दस दिन की साधारण सी चाकरी के बदले में उसने मुझ पर इतनी दया की और अधिक सेवा करने पर तो वह न जाने अपनी कितनी कृपा दिखावेगा ?'' इसके बाद हबीब दुनियाँ से विरक्त होकर और भी अधिक भक्ति भाव से धर्म साधना में लग गये।

एक दिन तपस्वी हुसैन हबीब के पास आये। हबीब के घर में उस समय रोटी का एक टुकड़ा और थोड़ा सा नमक था, वही उन्होंने हुसैन के आगे रख दिया। इतने में एक भिखारी आ गया। हबीब ने हुसैन के आगे रखा हुआ वह टुकड़ा उठाकर भिखारी को दे दिया। इस पर हुसैन बोले – ''हबीब! तुममें इतनी भी अक्ल नहीं है, अतिथि को परोसा हुआ अन्न वापस उठा लेना अनुचित है। यदि भिखारी को भीख देनी थी तो कुछ बचा रखना था।'' यह सुनकर हबीब कुछ बोले नहीं। कुछ ही देर बाद एक आदमी भोज्य पदार्थों से भरे थाल और पाँच सौ मुद्रायें लेकर

हबीब की सेवा में आया। हबीब ने धन गराबों में बाँट दिया और मिष्ठान हुसैन के आगे रखकर बोले– ''आप महापुरुष हैं, यदि आप में थोड़ा सा भी विश्वास होता तो ज्ञान और विश्वास का अच्छा संयोग होता। और वह संयोग प्रभु दर्शन के लिए बहुत आवश्यक है।''

हबीब अरबी भाषा अच्छी तरह से नहीं जानते थे। इसलिए वे कुरान का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते थे। एक दिन संध्या के समय हुसैन हबीब के पास आये। उन्हें नमाज के कुछ शब्द अशुद्ध बोलते सुनकर अपनी अलग शुद्ध नमाज पढ़ने लगे। रात्रि में स्वप्न में मानो उन्होंने ईश्वर से पूछा – ''हे प्रभु! तुम्हें किसमें संतोष है ? उन्हें उत्तर मिला– ''तूने मेरा संतोष तो पाया है, पर उसके लिए तू ठीक रीति निबाहता नहीं।'' हुसैन ने पूछा – ''यह कैसे ? उत्तर मिला, ''यदि तूने हबीब के साथ ही नमाज़ पढ़ी होती तो तेरा विशेष कल्याण होता। हबीब के भक्ति भाव की ओर ध्यान न देकर तूने ध्यान दिया उसके उच्चारण की ओर। उसके पवित्र अन्तःकरण की ओर तो तूने ध्यान दिया ही नहीं। जीभ से शुद्ध उच्चारण और हृदय के पवित्र भावों में जमीन आसमान का अन्तर है। शुद्ध वाणी की अपेक्षा शुद्ध विचार बहुत अधिक उत्तम है।''

एक दासी हबीब के यहाँ तीस वर्ष से रहती थी, तो भी हबीब ने एक दिन भी उसका मुँह नहीं देखा था। एक दिन हबीब ने उससे कहा– ''बहन! भीतर जाकर मेरी दासी को बुला ला। दासी बोली– ''आप जिसे बुलाते हैं, वह तो मैं ही हूँ। क्या आप नहीं पहचानते ?''
हबीब बोले– ''तीस वर्ष से मैंने ईश्वर के सिवा किसी की ओर स्थिर दृष्टि से नहीं देखा है, तो तुम्हें कैसे पहचानता।''

एक दिन किसी ने हबीब से पूछा– ''आप सब कामों से निपटकर एकांत सेवन करते हैं तो भी आपको संतोष कैसे होता है ?'' हबीब ने कहा– ''हृदय को पवित्र और सरल करने से ही संतोष होता है। जिस हृदय में असरलता की गंध भी नहीं रहती, वही हृदय संतोष पा सकता है।''

एक दिन एकांत में बैठकर हबीब ने कहा था– ''हे प्रभु! जिसे तुझसे संतोष नहीं, उसे दूसरे किससे संतोष होगा और जिसे तुझसे प्रेम नहीं, उसका दूसरे किससे प्रेम होगा?''

महर्षि हबीब के पास जब कोई कुरान पढ़ता तो वे भक्ति भाव से रुदन करने लगते। कुरान सुनकर जब उनकी आँखे छलकने लगती तो लोग पूछते– ''हबीब! आप आज्वम देश के रहने वाले हैं, कुरान का अर्थ भी नहीं समझते, तो भी आप रोने कैसे लगते हैं?'' उसके उत्तर में महात्मा हबीब कहते– ''मेरी जीभ भले ही आज्वम हो पर मेरा दिल तो अरबी है।''

हबीब का स्वर्गवास कब और कैसे हुआ इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

ऐ पाक परवर दिगार। हम भी तेरे नाशुक्र बंदे हैं। तेरी माया के जाल में हैं, तू ही सुख और दुख देता है। जिस पर तू नाराज़ होता है, उसे तू सुख ही देता है, जिसमें फंस क रवह तुझे भूल जाये और जिसे तू अपनाना चाहता है, उसे दुख कर दौलत से मालामाल कर देता है। बरदाश्त की शक्ति भी तो तू ही देता है, क्योंकि तू सर्व शक्तिमान है। हमें भी तू उस दुखों की नियामत में से थोड़ा हिस्सा दे और साथ ही अपने चरणों में अगाध प्रेम जिसमें डूब कर हम उस दुख को सहन कर सकें और तेरे बन्दे बने रहें। लेकिन हे दीनबन्धु हमारी परीक्षा कभी मत लेना क्योंकि हम इम्तिहान के काबिल नहीं हैं। हमें तो केवल तेरी दया का ही आसरा है। जो हम पर सदा बनी रहे और हम प्रतिक्षण उसका अनुभव करते रहें और तेरी महिमा तथा धन्य–गाथा हमेशा निरन्तर गाते रहें। तेरा निरन्तर शुक्र ही हमारी सच्ची बन्दगी है।

सच बोलना

साधारणतः जो बात हो उसको वैसा ही कह देना सत्य है। परन्तु कई बार ऐसा होता है कि सत्य बोलने से अपनी हानी या किसी और की हानी होने की संभावना होती है। अपनी हानी हो तो उसकी परवाह नहीं करनी चाहिये। सही बात को सही ही कहना चाहिये, परन्तु यदि किसी और की हानी होती हो तो उस समय क्या करना चाहिये ?

कई महापुरूषों का विचार है कि यदि किसी की हानी होती है तो तनिक झूठ बोलना बुराई में शामिल नहीं है। महाभारत के युद्ध में कई ऐसी घटनायें हुई हैं कि जहाँ भगवान ने स्वयं सच बात को सीधे रास्ते से नहीं किया परन्तु उसको और रूप दिया।

इसके प्रतिकूल राजा हरीशचन्द्र ने अपना सर्वस्य बलिदान कर दिया परन्तु असत्य नहीं बोला। युद्धिष्ठर ने एक ही बात अपन जीवन में सीखी वह थी सत्य बोलना।

परमार्थी को जहाँ तक हो सत्य बोलना चाहिये क्योंकि सत्य के बिना सात्विक गुण नहीं आ सकते और जब तक परमार्थी में सात्विक गुण नहीं आयेंगे मन स्थिर और शांत नहीं होगा। जब तक मन स्थिर और शांत नहीं होगा तब तक परमार्थी को वास्तविकता का अनुभव नहीं होगा।

इसके अतिरिक्त यदि परमार्थी ईश्वर में लय हो कर अपने सब कार्य करेगा तो वह कार्य ईश्वर के होंगे। ऐसी अवस्था में झूठ कभी बोला ही नहीं जा सकता। इसलिये परमार्थी को चाहिये कि सदैव ईश्वर को अपने सन्मुख रखे और जो कार्य करे, ईश्वर प्रेरणा से करे।

यदि किसी के चिंतन और आचरण में सत्यता विद्यमान है तो उसका मानव जीवन निष्चय ही धन्य होने जा रहा है।

–भगवान बुद्ध

प्रेरक प्रसंग

भिखारी से भीख

एक राजा था। उसकी दानवीरता की कहानियाँ यहाँ–वहाँ कही जाती थीं। उसके द्वार से कोई भी भिखारी ख़ाली हाथ नहीं लौटता था।

एक बार एक भिखारी उसके द्वार पर पहुँचा। उसने भीख के लिए आवाज़ लगाई। वह समय राजा का पूजा कर रहा था। राजा के लिए पूजा पहले थी, भीख देना बाद की बात थी।

राजा अपने मंदिर में गया और पूजा करने लगा। उसने बड़े मनोयोग से पूजा की। पूजा के बाद मूर्ति के आगे अपनी झोली फैलाकर प्रार्थना करने लगा – ''हे प्रभु! मुझे ढेर सारा धन दो, ताकि कोई भी मेरे द्वार से कभी ख़ाली न जा सके। हे प्रभु! मुझे अपार शक्ति दो ताकि मैं दूसरे राजाओं को जीत सकूँ। मेरी ताकत का दबदबा बना रहे। हे प्रभु! मुझ पर ऐसी कृपा करो कि मेरा साम्राज्य बराबर फैलता चला जाये। मैं एक दिन चक्रवर्ती सम्राट बन जाऊँ।''

राजा पूजा करके बाहर आया। उसने देखा कि भिखारी तो दान लिए बिना ही चला जा रहा है। राजा को बड़ा दुःख हुआ। राजा ने अपने चाकर से आवाज़ लगवाई– ''अरे ओ भिखारी! ख़ाली हाथ क्यों लौटे जा रहे हो ? वापस आ जाओ। अपना दान लेते जाओ। राजा साहब को पूजा में ज़रा देरी हो गई। इसके लिए उन्हें क्षमा कर दो।''

भिखारी यह सुनकर पीछे मुड़ा और बोला– ''राजन! मैं भिखारियों से भीख नहीं लेता। आपने तो माँगों का ताँता भगवान के मंदिर में भी लगा दिया। इस प्रकार आप ही मुझसे बड़े मँगते हो, आपसे क्या माँगूं।'' और वह भिखारी बिना कुछ लिए यों ही चला गया।

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार–शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम–सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट–छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजिस्टर्ड ऑफिस

9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
गाज़ियाबाद–201009

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी–66, सैक्टर–6, नोएडा–201301